27 जून 1961

इस सबको सूत्रों और शब्दों में व्यक्त करना कितना व्यर्थ जान पड़ता है; चाहे जितने सही शब्द प्रयोग क्यों न किये गये हों, वर्णन कितना भी अधिक सुस्पष्ट क्यों न हो, इस सबके माध्यम से वास्तविक तथ्य संप्रेषित नहीं हो पाता।

इस सबमें एक विराट, और अनिर्वचनीय सुंदरता है। जीवन की एक ही गति है, बाह्य हो या आंतरिक हो; वैसे तो यह गति अविभाज्य है, पर इसे विभाजित कर दिया जाता है। विभाजन के फलस्वरूप अधिकतर लोग इसके बाह्य रूप अर्थात ज्ञान, धारणाओं, विश्वासों, प्रामाण्य, सुरक्षा और समृद्धि आदि के पीछे भागते हैं। इसकी ही एक प्रतिक्रिया के रूप में व्यक्ति तथाकथित आंतरिक जीवन का अनुसरण करता है, जिसकी अपनी सूक्ष्म अनुभूतियां, आशाएं, लालसाएं, रहस्य, द्वंद्व तथा हताशाएं होती हैं। चूंकि यह गति भी एक प्रतिक्रिया ही है, अतएव बाह्य गति से इसका टकराव चलता रहता है। इसके फलस्वरूप एक अंतर्विरोध उत्पन्न हो जाता है, जिसके अपने ही क्लेश, दुश्चिंताएं तथा पलायन आदि होते हैं।

वस्तुतः केवल एक ही गति है, वही बाह्य है और वही आंतरिक भी। बाह्य को समझने के साथ ही आंतरिक गति का प्रारंभ होता है, और यह आंतरिक गति न तो बाह्य के विरुद्ध होती है और न उसकी विरोधाभासी होती है। तब चूंकि द्वंद्व का निवारण हो चुका होता है, इसलिए मस्तिष्क न केवल अत्यधिक संवेदनशील तथा सतर्क होता है, वरन् वह अनायास ही मौन भी हो जाता है। और इस स्थिति में केवल आंतरिक गति ही प्रामाणिक तथा अर्थपूर्ण होती है।

इस गति से एक उदारता और करुणा अस्तित्व में आती है, जो किसी तर्कबुद्धि अथवा प्रयोजनपरक स्व-निषेध का प्रतिफल नहीं है।

किसी पुष्प का जीवट सौंदर्य इसी में निहित है कि इसे विस्मृत किया जा सकता है, उपेक्षा से दूर हटाया जा सकता है, या फिर विनष्ट ही कर दिया जा सकता है।

महत्त्वाकांक्षी लोग सौंदर्य से अनभिज्ञ होते हैं। सारभूत की भावना, सत्त्व का एहसास ही सौंदर्य है।

28 जून 1961

वह जो कि पावन है, लक्षणों से रहित है। देवालय में रखा प्रस्तर, चर्च में लगी प्रतिमा, कोई प्रतीक पावन नहीं है। मनुष्य अपनी जटिल उत्कंठाओं, भयों और तृष्णाओं से परिचालित होकर उन्हें पावन, पवित्र आराध्य कहता है। यह 'पावनता' अब भी विचार ही के क्षेत्र में होती है; इसका निर्माण विचार के द्वारा ही किया जाता है और विचार में कभी भी कुछ नूतन अथवा पवित्र नहीं होता है। विचार जटिल मतवादों और विश्वासों की रचना कर सकता है, और जिन प्रतिमाओं, प्रतीकों आदि को यह प्रक्षेपित करता है, वे किसी भवन के नक्शों से अथवा एक नये हवाई-जहाज की रूपरेखा से अधिक पवित्र नहीं होते। यह सभी कुछ विचार के ही सीमांतों में परिबद्ध है और इसमें ऐसा कुछ नहीं है जिसे पवित्र अथवा रहस्यमय कहा जा सके। विचार पदार्थ ही है और इससे कुछ भी बनाया जा सकता है, असुंदर भी, सुंदर भी।

पर एक पावनता है, जिसका स्रोत न विचार में है, न विचार द्वारा पुनर्जीवित की गई किसी भावना में। इसे विचार द्वारा नहीं पहचाना जा सकता, न ही यह विचार के उपयोग में आ सकती है। विचार इसका

प्रतिपादन नहीं कर सकता। किंतु एक पावनता है तो; किसी भी प्रतीक या शब्द से अस्पर्शित, अनछुई। यह निर्वचनीय नहीं है, इसका संप्रेषण नहीं हो सकता। यह पावनता एक तथ्य है।

तथ्य को तो देखना होता है, और देखना शब्द के माध्यम से नहीं हुआ करता। जब किसी तथ्य की व्याख्या कर दी जाती है, तो वह तथ्य नहीं रह जाता; यह उससे कुछ नितांत भिन्न ही बात हो जाती है। सर्वाधिक महत्त्व देखने का है। यह देखना समय-आकाश से बाहर है; यह देखना तत्क्षण, तुरंत होता है। और जो देख लिया जाता है वह पुनः वही कभी नहीं होता है। इसमें 'फिर से' या 'इस दौरान' जैसा कुछ है ही नहीं।

इस पावनता का उपासक, वह अवलोकनकर्ता जो इस पर ध्यान लगाए, है ही नहीं। यह खरीदने या बेचने की, बाज़ार की वस्तु नहीं है। सौंदर्य की तरह इसे इसके विपरीत के माध्यम से नहीं देखा-समझा जा सकता, क्योंकि इसके विपरीत का अस्तित्व है ही नहीं।

वह उपस्थिति यहां है, कक्ष को आपूरित करती, पर्वतों पर छलकती, जलराशियों पर व्याप्त होती, और उनसे पार धरित्री को आवृत करती।

'कृष्णमूर्ति नोटबुक'